'ब्रह्म सत्यं जगत् स्फूर्तिः, जीवनं सत्यशोधनम्'

विनोबा-प्रवचन

(सप्ताह में तीन बार—मंगल, गुरु और शनि को प्रकाशित)

वर्ष ३, अंक ५ | वाराणसी, शनिवार, १० जनवरी, १९५९ | पचीस रुपया वार्षिक

प्रार्थना-प्रवचन

चित्रासणी (बनासकाँठा) १-१-'५९

अकार को विभूति मानकर नववर्ष का अभिनन्दन

यहाँ जितने ग्रामदान हुए हैं, उनकी बातें हमने सुनीं। आश्चर्य हुआ कि ग्रामदान इतनी धीमी गति से कैसे चल रहा है। जमाना विज्ञान का है। अगर हम साधारण जमाने में होते तो मैं न कहता कि यह सारा काम धीरे-धीरे हो रहा है, लेकिन जिस विज्ञान के जमाने में हम हैं, वह जमाना साधारण नहीं है, बल्कि असाधारण जमाना है। इसलिए इसमें काल की गति बहुत बढ़ गयी है। यानी सब लोगों को मिलकर एक निश्चित समय में यह काम पूरा करना चाहिए। क्या यह सम्भव होगा ?

ईश्वर तालुकादान भी चाहता है

इसका उत्तर आज ग्रामदानवाले भाइयों ने दिया। उनसे मेरी बातें चल रही थीं। मैंने उनसे कहा कि यह पूरा क्षेत्र ग्रामदान होना चाहिए। उनमें से एक भाई ने जवाब दिया कि "ईश्वर की आज्ञा होगी, तो हो जायगा।" मैंने कहा : "ईश्वर की आज्ञा तो है ही।" उन्होंने भी कहा : "हाँ, ईश्वर की आज्ञा तो है ही। अगर ऐसा न होता तो हमें ग्रामदान की प्रेरणा ही कैसे मिलती ? ईश्वर की आज्ञा के बिना, उसकी इच्छा के बिना हमें प्रेरणा मिलना संभव ही नहीं था। इसलिए ईश्वर की इच्छा ऐसी है कि सब कार्यकर्ता इकट्ठे हों, लोगों के पास पहुँचें और ग्रामदान नहीं, तालुका दान में दें।"

हम परमेश्वर के संकल्प का ही जप करें

हमारे इस आन्दोलन में बहुत-से लोग अब कुछ सावधानी से बोलने लगे हैं। वे कहते हैं, बड़ी-बड़ी बातें करना और उसमें सफलता न पाना, इससे अच्छा यही है कि छोटी बातें ही बोली जायँ और जितनी सफलता हो, उतना ही बोलें। लेकिन मैं ऐसा नहीं कह सकता। डरकर बोलना हो तो भी मैं पाँच करोड़ की ही बात कहूँगा और वही मैंने की। उसका दसवाँ हिस्सा मुझे मिला है यानी करीब चालीस-पचास लाख एकड़ जमीन मिली है। इसका अर्थ यह हुआ कि सौ में से दस नम्बर मुझे मिले और मैं अनुत्तीर्ण हो गया। फिर भी मुझे यही अच्छा लगता है कि परमेश्वर की इच्छा का उच्चारण कर अनुत्तीर्ण होना ही ठीक है, अपनी इच्छा का उच्चारण कर पास होने में मुझे श्रद्धा नहीं। यदि मैं अपने हिसाब से बोलता तो पाँच करोड़ की जगह अधिक-से-अधिक पाँच लाख की बात कर सकता था। वह पूरा होता या नहीं, कहा नहीं जा सकता। लेकिन मान लीजिये, वह पूरा होता तो उसके करनेवालों को अहंकार हो जाता कि हमने एक संकल्प किया और उसकी पूर्ति हमारे ही प्रयत्न से हुई। ऐसा कुछ भी मुझे नहीं हुआ, क्योंकि पाँच करोड़ एकड़ का संकल्प परमेश्वर का संकल्प था। पाँच लाख ग्रामदान का संकल्प भी परमेश्वर का ही संकल्प है। यानी परमेश्वर का जो संकल्प है और उसकी जो इच्छा है, उसका ही जप हमें करना चाहिए और उसे पूरा करने में लग जाना चाहिए। जिन मुखों को ईश्वर के संकल्प का उच्चारण करने की हिम्मत नहीं होती, वे भक्तों के मुँह ही नहीं हैं, वे उनके अपने मुँह हैं। इसलिए मैं तो यही कहूँगा कि भारत में जितने ग्राम हैं, वे सब ग्रामदान होने चाहिए और वह हुए बिना हमारे लिए आराम की गुंजाइश नहीं। भले ही सारी जिन्दगी उसमें चली जाय, इसकी मुझे कोई चिन्ता नहीं।

सब कुछ ईश्वर हमसे करवाता है

आज एक भाई ने कविता पढ़कर सुनायी। उसमें था कि "हमें अपने साथियों के प्रति विश्वास होना चाहिए, उनके बारे में पूरी आशा होनी चाहिए तथा सत्य के बारे में प्रेम और प्रेम में कृत-निश्चय होना चाहिए।" यह सुनकर मेरी आँखों से आँसू बहने लगे। मुझे ऐसा लगा, मानो इसमें मेरा ही वर्णन किया गया हो। मुझे मेरे साथियों में पूर्ण विश्वास है और पूरी आशा भी है। मुझे उस सत्य का दर्शन भी है कि जमीन की मालकियत मिटानी चाहिए, उत्पादनों के साधनों की मालकियत मिटनी चाहिए। इस सत्य के लिए मुझे प्रेम भी है और उस प्रेम में मैं कृतनिश्चय भी हूँ। लेकिन मैं कुछ भी नहीं हूँ। ईश्वर मुझसे जो कुछ करवाता है, उसमें मेरी गिनती ही क्या ? सभीकी ऐसी ही निष्ठा होनी चाहिए। हम सभीमें परस्पर अनुराग और प्रेम हो। अपनी सत्यनिष्ठा से हम कभी भी निराश न हों।

सफलता का श्रेय ग्रामवालों को ही

मुझे विश्वास है कि यह काम बोली बोलकर होनेवाला है। नहीं तो ये सब भाई कहाँके कहाँ आकर इकट्ठे हो गये हैं। ये एक भाई हैं। हैं तो नागपुर के, लेकिन इन्होंने कुछ काम भंडारा में किया है, कुछ बंगाल में और कुछ नागपुर में। कुछ हुआ,

तो कुछ नहीं भी हुआ। इतना हिस्सा जोत खाने से बाहर जाकर विस्तृत ज्ञान-शक्ति पाना ही अच्छा मानकर वे बंगाल, रत्नागिरी और खानदेश में गये। खानदेश में २०० गाँवों का एक पूरा महाल, जो ग्रामदान में मिला, वह केवल इन्हींका पराक्रम था, ऐसा नहीं। ५-२५ कार्यकर्ता उस काम में लगे थे। सरकारी अफसरों की भी यहाँकी तरह सहानुभूति थी। इस तरह कार्यकर्ता, सरकारी अफसर और परमेश्वर की इच्छा, तीनों मिलकर वह काम हुआ। वहाँ काम करके वे यहाँ आये हैं। इस तरह कहाँ-के आदमी कहाँ काम करते हैं। इनको यहाँकी भाषा भी नहीं आती। कार्यकर्ता काम पर लग गये और गाँवों के लोग जगे, तब यह काम हो सका। इसलिए यदि किसीको शत-प्रतिशत श्रेय है तो वह गाँववाले भाइयों को ही है। उन्होंने हिम्मत कर यह सन्देश सुना और उस प्रकार किया। केवल सुनकर ही कोई काम नहीं होता, उसके लिए अन्दरूनी हिम्मत भी जरूरी है। आज मैंने उन ग्रामदानी भाइयों से कहा कि आप लोगों ने ग्रामदान किया, यही पर्याप्त नहीं है। आप लोगों को दूसरे गाँवों में जाकर इसका प्रचार भी करना चाहिए और वहाँवालों को समझाना चाहिए कि ग्रामदान कीजिये। इसपर एक भाई ने मुझे जवाब दिया कि ऐसा काम हम कर रहे हैं और दूसरों को भी करने के लिए कहते हैं, इसीलिए तो ये ग्रामदान हो रहे हैं। काम पूरा हो और मैं आराम करूँ? किन्तु जितना आराम मुझे बैठने से मिलता है, उससे अधिक चलने में मिलता है, क्योंकि यहाँ आराम के साथ राम है।

आरामः कल्पवृक्षाणां विरामः सकलापदाम्।
अभिरामस्त्रिलोकानां रामः श्रीमान् स नः प्रभुः॥

राम हैं अपने प्रभु और वही अपना आराम है और वही विराम है। इसलिए इतने साल हुए निश्चिंत होकर बैठने की कोई इच्छा मुझे नहीं होती। उसके सिवाय और कोई भी आराम या विराम मेरे लिए नहीं है।

ईश्वरीय बातें दुनिया से कुछ और

कुछ लोग कहते हैं कि इतने वर्ष काम किया, फिर भी हम सफल नहीं हुए। हमने बहुत बड़ी-बड़ी बातें कीं, इसलिए कुछ नहीं हुआ, इसीलिए हमारी फजीहत हो रही है। हमें सावधानीपूर्वक बातें करनी चाहिए और जितनी बातें हम करें, उतनी पूरी हों, यह जरूरी है, किन्तु मुझे ये सारी दलीलें थोथी लगती हैं। 'जितना कहें, उतना करें या जितना करें, उतना कहें' तो फिर वह मामूली बातें हो जायँगी। ऐसी बातें कहीं ईश्वरप्रेरित हो सकती हैं? घरों के कामों में ऐसी-ऐसी मामूली बातें हम करते रहते हैं। लेकिन ईश्वर की बातों में, जब कि ईश्वर का राज्य सारी दुनिया में होनेवाला है, हम ऐसी बातें करें तो वे कैसे चलेंगी?

'समर्पण-योग' समझिये

जमीन की मालकियत मिटनी चाहिए और वह मिटकर रहेगी। उत्पादन के साधनों की व्यक्तिगत मालकियत नहीं होनी चाहिए। लेकिन यह जबर्दस्ती से नहीं होगा। धर्मकार्य जबर्दस्ती नहीं होने चाहिए। यदि होते हैं तो अपेक्षा से विपरीत परिणाम आते हैं। माता-पिता प्रेमपूर्वक कन्यादान का मंगल-कार्य करते हैं। उसकी जगह मान लीजिये कि कोई हमलावर किसी लड़की को ले भागे तो क्या वह मंगल-कार्य कहा जायगा? इस तरह मंगल-कार्य हो नहीं सकता। ऐसे काम प्रेमपूर्वक समझा-बुझाकर ही हो सकते हैं। आज विज्ञान-युग आ गया है। इस जमाने में हम सभी एक होकर रहेंगे, तभी टिक सकेंगे और तभी हमारा काम चल सकता है। ऐसा ही निश्चय कर काम करना चाहिए। साथ ही विश्वास और श्रद्धापूर्वक अपने पास जो हो, उसे समर्पण करना चाहिए। यह समर्पण-योग आपको समझना चाहिए।

आरम्भ में जब मैंने दान लेना शुरू किया तो उन दिनों समझता था कि दान के रूप में सम्पत्ति का विभाजन होना चाहिए। किन्तु अब द्वितीय चरण शुरू हुआ और वह है—समर्पण या कृष्णार्पण! समाजरूपी भगवान कृष्ण को हमारे पास जो कुछ भी हो, उसे अर्पण कर दिया जाय और समाज से जो कुछ मिले, उसे प्रसाद-रूप में ग्रहण करें। इस तरह कुछ कम मिलेगा, ऐसी बात नहीं। जितना मिले, उतना ही भगवत्प्रसाद के रूप में ग्रहण किया जाय।

मालकियत कितनी जोड़ेंगे?

आखिर मालकियत जोड़ते-जोड़ते कितनी जोड़ेंगे? हिन्दुस्तान में जमीन कितनी है? कोई भी अधिक जमीन का मालिक नहीं हो सकता। अधिक-से-अधिक २०-२५ एकड़ जमीन के मालिक हो सकते हैं। फिर जैसे-जैसे जन-संख्या बढ़ेगी, वैसे ही वैसे १०-५ एकड़ जमीन की मालकियत की बात हो जायगी। इसलिए समाज की मालकियत की बात करें और उससे जो प्रसाद-रूप में मिले, उसे लेने में कोई हानि नहीं। इसलिए मैं तो इसे ईश्वरीय विचार समझकर निरन्तर इसीका जप किया करता हूँ।

गुजरात में ग्रामदान-कार्य ४३ वर्षों से

मुझे प्रसन्नता है कि गुजरात में भी इसका बीज गहरा बोया जा चुका है और फल भी अच्छा आयेगा। यहाँ भी उसका उत्तम परिणाम निकलेगा। गुजरात में यह काम पाँच-सात वर्षों से चल रहा है, ऐसी बात नहीं। जब सन् १९१५ में गांधीजी यहाँ आये, तभी से यह काम चल रहा है। जब हम लोग आश्रम में थे तो रोज शाम को घूमने के लिए जाते थे। उस समय गांधीजी कई बार कहा करते थे कि हमें तो गाँव-गाँव स्वराज्य की स्थापना करनी है। 'हिन्द-स्वराज्य' का अर्थ ही 'ग्राम-स्वराज्य' है और ग्राम-स्वराज्य ही शत-प्रतिशत स्वराज्य है। इसी तरह स्वदेशी याने शत-प्रतिशत स्वदेशी। गांधीजी यही समझाते और आदेश देते थे कि गाँव-गाँव पहुँचना चाहिए और वहाँ आश्रम बनाना चाहिए। यह ४३ वर्ष पूर्व की बात है। गुजरात में ग्रामदान का काम तभी से चला आ रहा है।

ग्रामदान से डरें नहीं

इन भाई-बहनों ने बहुत ही अच्छा काम आरम्भ किया है। आप ग्रामदान से डरिये नहीं और न किसीको डराइये ही। लोग आकर आपसे कहेंगे कि ग्रामदान होने के कारण आपको कर्ज कौन देगा? लेकिन ग्रामदान होने के बाद जब सभी एक हो जायँगे तो डरने की बात ही क्या है? यह ईश्वरीय इच्छा का काम है, इसलिए आज नहीं तो कल अवश्य देंगे। इसलिए आज दान न देनेवालों को अभय-दान मिलना चाहिए।

नववर्ष का अभिनन्दन

मुझे बहुत ही आनन्द हो रहा है कि नववर्ष के पहले दिन आप लोग मुझसे मिले और यहाँ ५४ गाँवों का ग्रामदान घोषित करते हुए एक ने कहा कि हमारी आयु भी ५४ वर्ष की है। इसलिए

इस शुभ आँकड़े का दान घोषित किया गया, यह तो ठीक ही है। जब कोई अच्छा काम किया जाता है तो वह आँकड़ा शुभ होगा। लेकिन सर्वोदय का आँकड़ा तो ५ लाख का है। अतः हिन्दुस्तान के पाँच लाख गाँवों में ग्रामदान होना चाहिए। इस दृष्टि से यह तो आरम्भ अकार है। 'अकारो वासुदेवः स्यात्' सभी अक्षरों में अकार ही श्रेष्ठ है। इसी तरह यह ६४ ग्रामदान अकार माना जाय और अकार को परमात्मा की विभूति मानकर मैं इसका अभिनन्दन करता हूँ।

◆

प्रार्थना-प्रवचन

जगुदण (महेसाना) २५-१२-'५८

कोई हमें मारे तो हम खिलखिलायें !

आप सभी जानते ही हैं कि हमारे इस देश पर और दुनिया पर परमात्मा की कृपा और करुणा रही है। उसने असंख्य महापुरुषों की यहाँ वृष्टि की है। मुझे बड़ी ही प्रसन्नता होती है कि आज देश में तरह-तरह का शिक्षण चलता है, फिर भी छात्र मेरे पास आकर आध्यात्मिक प्रश्न पूछा करते हैं। आत्मा, भक्ति, चित्त-शुद्धि आदि के बारे में कॉलेज के छात्र भी मेरे निकट जिज्ञासा करते हैं। इसलिए निस्सन्देह भारत पर भगवान की कृपा है।

ईसा का पुण्यस्मरण

आज ऐसे ही एक सन्त के विषय में चर्चा करना चाहता हूँ। वे हैं ईसामसीह। ईसाई धर्म उन्हींके नाम पर चलता है, लेकिन स्वयं वे किसी धर्म के न थे। वे तो सब धर्मों से परे थे। उनका सारी दुनिया पर प्रेम था। इनके देशबान्धवों ने गलत-फहमी से इन्हें मार डाला। इस बात को हुए आज इतनी शताब्दियाँ बीत गयीं, फिर भी लोग उन्हें भूल नहीं गये हैं। आज के दिन इनका जन्म-दिवस मनाया जाता है और यूरोप, अमेरिका, एशिया और दुनिया के सभी खण्डों में उनकी जयन्ती मनायी जाती है। हमारे देश में भी आज का दिन सार्वजनिक अवकाश का दिन माना जाता है।

ईसा का सन्देश : हम दुश्मन पर भी प्रेम करें

ये महापुरुष हमारे एशियाखण्ड में पैदा हुए थे और इनके अत्यन्त निकट के शिष्य इनकी मृत्यु के पचास वर्षों के अन्दर हिन्दुस्तान में आये थे। अंग्रेज यहाँ आये और यहाँका राज्य लिया तो उनके साथ ही ईसाई धर्म भी आ गया, ऐसी बात नहीं है। इससे पहले ही ईसाई धर्म-प्रचारक मलबार के किनारे पर उतरे और उन्होंने वहाँ ईसा का सन्देश पहुँचाया। उनका सन्देश यह था कि "हम दुश्मन पर भी प्रेम करें। जो हमसे द्वेष करे, हम उसपर प्रेम करें।" द्वेष करनेवालों पर हम द्वेष न करें, यह बात तो समझ में आ सकती है, लेकिन उनपर प्रेम कैसे किया जाय, यह समझना कठिन है। किन्तु ये महापुरुष अपना द्वेष करनेवाले पर भी प्रेम करते थे। वे मानते थे कि द्वेष करनेवाला हमें सजग बनाये रखता है। हमारे मन में अहंकार न हो, इसलिए वह हमें जागृत रखता है। वह दुश्मन के रूप में दोस्त ही है। अतः हमें उसकी ओर प्रेम से देखना चाहिए।

भारतीय संतों की भी वही परम्परा

हमारे यहाँ भगवान बुद्ध भी ऐसी ही शिक्षा दिया करते थे। हमारे सन्त नरसी मेहता और मीराबाई भी यही कहती थीं। मीरा ने गाया है कि 'विष का प्याला राणाजी ने भेजा', पर वह उसे अमृत कहकर पी गयी। इस तरह दुश्मन पर प्रेम करनेवाले सन्त हमारे यहाँ हो गये हैं। ईसा ने भी यही शिक्षा दी। आज के लिए यह शिक्षा बहुत जरूरी है। पहले यह व्यक्ति के आत्मकल्याण, चित्त-शुद्धि, ईश्वर-दर्शन आदि के लिए जरूरी था ही, लेकिन आज एक अन्य कारण से भी जरूरी है। क्योंकि आज द्वेष बढ़ गया है और हम छोटे-छोटे हथियारों से बड़े-से-बड़े भयंकर हथियारों तक पहुँच गये हैं। लाठी, चाकू, तलवार से बम तक पहुँच गये हैं। बमों में भी एक-से-एक शक्तिशाली बम खोजे जा रहे हैं। ऐसा एक बम ऊपर से गिरे तो पाँच हजार लोग घायल हो जायँ। इससे हवा में भी जहर फैल जाता है, जिसका दस-बीस साल तक प्रभाव रहता है। आगे पैदा होनेवाली प्रजा भी पंगु बन जाती है।

आध्यात्मिक ही नहीं, आज की व्यावहारिक बात

आज यूरोप में और दुनिया में झगड़े और समस्याएँ हैं, इनके हल के लिए क्या करना चाहिए ? इसलिए आज के जमाने में आवश्यक है कि कोई हमसे जितना ही द्वेष करे, हमें उससे उतना ही प्रेम करना चाहिए। उनके पास जितने भयानक शस्त्र हों, हमारे पास उतने ही बलवान साधन होने चाहिए, जिससे हम उसपर प्रत्याक्रमण कर सकें। यदि हम इस तरह प्रेम का शस्त्र बना सकेंगे, तभी इस जमाने में टिक पायेंगे, नहीं तो सारा मानव-समाज ही टिक न सकेगा। हर जानकार समझता है कि यदि कहीं लड़ाई फूट निकले और उसमें इन शस्त्रास्त्रों का प्रयोग हो तो मानव-जाति ही नष्ट हो जायगी। इसीलिए आज यह व्यावहारिक आवश्यकता निर्माण हो गयी है कि यदि कोई दो सेर द्वेष करता है तो हम तीन सेर प्रेम करें। इसलिए सन्तों की यह शिक्षा केवल आध्यात्मिक चित्त-शुद्धि आदि के लिए नहीं, व्यावहारिक कारण के लिए भी है। यदि आप यह कहकर इसे न समझें कि बाबा तो बहुत बड़ी-बड़ी बातें करता है तो समझ लीजिये कि आप जीने योग्य नहीं रहे। इसे ऊँची बात कहकर उपेक्षा कर देंगे तो दुनिया में जीने योग्य ही न रहेंगे। मैं यह यह नहीं कहता कि इसके न मानने से आपको परलोक में गति न मिलेगी। बल्कि यही कहता हूँ कि इसके न मानने पर आप इस दुनिया में भी नहीं रह सकते।

बच्चे मारनेवाले से डरें नहीं

बच्चों को भी यह बात समझनी चाहिए कि यदि कोई आपको तमाचा मारे तो आप डरकर भाग न जायँ और शत्रु को मारना भी ठीक नहीं। उससे प्रेम से मिलना चाहिए और माफ कर देना चाहिए। उसे मित्र बना लेना चाहिए। उसे मित्र समझकर उससे प्रेम करना चाहिए। किन्तु आज होता यह है कि कोई तमाचा मारता है तो या तो हम भाग जाते हैं या उसपर आक्रमण कर देते हैं। लेकिन मैं आपको अलग ही बात बताता हूँ। कोई आपको मारे तो आप खिलखिलाकर हँसें। इससे सामनेवाला समझेगा कि इसे मारने में कोई अर्थ नहीं। बच्चों को, छात्रों को ऐसी ही तालीम मिलनी चाहिए।

पीटने से बच्चे डरपोक बनते हैं

लेकिन बच्चों को यह तालीम मिले तो कैसे मिले ? जब

माता-पिता ही बच्चों को मारते हैं तो वे उन्हें यह शिक्षा कहाँसे देंगे? फिर तो सभी बच्चों को पीटेंगे और वे डरपोक बन जायँगे। इसलिए बच्चों को मारना-पीटना नहीं चाहिए। उन्हें प्रेम से ही समझाना चाहिए और समझना चाहिए कि जो लड़का हमारे यहाँ जनमा है, वह भगवान का भेजा हुआ है। वह प्रभु-मूर्ति की तरह हम माता-पिताओं पर श्रद्धा रखता है। हम जिसे चाँद कहते हैं, उसे वह भी चाँद मान लेता है। सूरज कहें तो सूरज मान लेता है। ऐसे श्रद्धालु बच्चे को हम मारते हैं तो माँ-बाप कैसे कहे जा सकते हैं? इसलिए माता-पिता या शिक्षकों को ऐसा काम कभी न करना चाहिए। यदि हम क्रोधवश हो बच्चों को मारते रहेंगे तो दुनिया में कुछ भी न कर सकेंगे। कोई डरानेवाला मिल जाय तो बस, हमारा सामर्थ्य समाप्त हो जायगा। इसीलिए सन्तों ने यह तालीम दी है कि दुश्मन पर प्रेम करो। आज इसकी बहुत जरूरत है।

अत्याचारी के लिए भी क्षमा-याचना

ईसा को तो क्रास पर लटकाकर कीलें ठोंकीं, जिसकी वेदना उन्हें घण्टों सहनी पड़ी थी। फिर भी उन्होंने कहा कि प्रभो! इन्होंने मुझपर जो अत्याचार किये हैं, यह इनका अज्ञान है। इन्हें माफ कर देना। इस तरह उन्होंने खुद को मारनेवाले के लिए भी भगवान से क्षमा ही माँगी।

यही मानव-जीवन की सार्थकता

ऐसे महापुरुष का आज जन्म-दिवस है। ऐसे दिन यदि हम अपने जीवन के विषय में कुछ विचार न करें तो यह मानव-देह पाना ही व्यर्थ हो जायगा। इन सन्तों ने हमें बताया है कि इस मानव-देह से व्यक्ति कितना ऊँचा चढ़ सकता है। इस देह से हम पशु से भी अधिक पशु बन सकते हैं और देवता से बढ़कर देव बन सकते हैं। इसी देह से हम परम पद तक पा सकते हैं। याने ऊँचे-से-ऊँचे उठ सकते हैं और नीचे-से-नीचे गिर भी सकते हैं। ऐसी शक्ति इस नर-देह में है। इससे लाभ उठाकर यदि हम यह सारी शिक्षाएँ ग्रहण करें तो निश्चय ही हमारी उन्नति होगी।

सर्वोदय-पात्र द्वारा प्रेम-संकल्प

फिर आप स्वयं कहेंगे कि हम अपने यहाँ सर्वोदय-पात्र रखेंगे। इन चौवन गाँवों में सर्वोदय-पात्र रखने का निश्चय किया है, यह कितनी अच्छी बात है? ये इस पात्र में प्रतिदिन मुट्ठीभर चावल डालेंगे तो क्या कहेंगे? यही मंत्र पढ़ेंगे कि हम दुश्मन पर भी प्रेम करेंगे। ऐसी हिम्मत करेंगे कि इसके अन्तर में स्थित भगवान को जगा सकें। वह बम गाँव-गाँव में कुछ भी नहीं कर सकता। उन्हें लगेगा कि ये लोग निर्वैर, निर्भय, शान्ति-इच्छुक और भक्त हैं। फिर तो गाँव से द्वेष करनेवाले भी ठंडे पड़ जायँगे।

नये युग के लिए नया मन चाहिए

कुछ लोग कहेंगे कि यह बाबा तो सतयुग की बातें कर रहा है। लेकिन आप इन्हें सतयुग की बातें कभी न मानिये। कलियुग में ये सारी बातें चल नहीं सकतीं, ऐसा भूलकर भी न मानें। यदि यह न हो सके तो समझ लें कि मानव-समाज टिक नहीं सकेगा। आज विज्ञान कितने आगे बढ़ गया है। कुत्ता भी आठ सौ मील ऊपर चढ़ गया। सूर्य-चन्द्र की तरह कुत्ता भी आसमान में जा बैठा। ऐसे जमाने में मन नीचा करने से कैसे चलेगा? आज के युग में वह पुराना जर्जर मन चल नहीं सकता। यह तो नवयुग आ गया है। उसके लिए तो नया मन चाहिए।

बच्चों को नेक सलाह

सारांश, जब बच्चे सर्वोदय-पात्र में मुट्ठीभर चावल डालते हैं तो दुश्मन पर भी प्रेम करने की प्रतिज्ञा करते हैं। दुश्मन गाली देगा तो हम उसे राम-नाम सुनायेंगे। कोई मारने आये तो हँसना चाहिए। उससे कहना चाहिए कि 'तू मुझे मारकर क्या करेगा? किसी दिन तो मैं मरनेवाला ही हूँ।' उसके सामने से भाग जाना ठीक नहीं। यदि ऐसा होगा तो वह सामनेवाला शांत हो जायगा। छात्रों को और बच्चों को ऐसी शिक्षा मिलनी चाहिए।

सर्वोदय-पात्र : विश्व-प्रेम का पात्र

ईसा का यह सन्देश मानवमात्र के लिए है। इसे मैंने आपको सुनाया। मैं चाहता हूँ कि इन सर्वोदय-पात्रों को प्रेम-पात्र माना जाय। जिस तरह ये ५४ गाँवों में हुए, उसी तरह सर्वत्र हों तो भारत की काया ही पलट जाय। कोई भी व्यक्ति सर्वोदय-पात्र में अनाज डाले बगैर खाये नहीं। इससे हम शांति-सैनिकों का संघटन करेंगे। यदि ऐसा हुआ तो भारत भगवान का प्यारा देश होगा। फिर इसपर संकट ही नहीं आयेगा। इतना ही नहीं, फिर दुनिया के अन्य राष्ट्र भी इसीका अनुकरण करेंगे और सर्वत्र शांति, सद्भावना स्थापित होगी। बच्चे निश्चय करें कि कोई मारने आयेगा तो हम खिलखिलाकर हँसेंगे।

प्रार्थना-प्रवचन

अलियावाड़ा २६-११-'५८

आज की शिक्षण-पद्धति से बगावत करें

समाज की व्यवस्था के लिए ज्ञानी पुरुषों को योजनाएँ सूझती हैं। फिर समाजवाले समाज के अनुसार उन योजनाओं को अमल में लाते हैं। अमल में लाने के लिए मूल योजना का स्वरूप थोड़ा बदल जाता है। जैसे-जैसे काम आगे बढ़ता है, वैसे-वैसे नये जमाने के लोग उस योजना को सुधारते चलते हैं। यों करते-करते योजना में कुछ बिगाड़ भी आ जाता है। धीरे-धीरे योजना बिल्कुल विकृत रूप को प्राप्त होती है और फिर किसी काम में नहीं आती। तब उसकी जगह दूसरी योजना करने की जरूरत पड़ती है। यह व्यवस्था सारे इतिहास में दिखाई पड़ती है।

वर्ण-व्यवस्था का जन्म

अपने देश में ज्ञानी लोगों ने एक ऐसी योजना बनायी। समाज में अनेक काम होते हैं, समाज के लोग उनका बँटवारा करके काम करें। एक काम से दूसरे काम की स्पर्धा न हो, समाज की ओर से सबको समान रीति से पोषण मिले और समाज की ओर से सबको समान रूप में बाँटा जाय। इस तरह उन्होंने 'चातुर्वर्ण्य' के काम की वर्ण-व्यवस्था की। पीछे ये चार जातियाँ हो गयीं और आखिर में परिणाम यह आया कि धीरे-धीरे इन जातियों के दायरे बने। फलानी जाति का काम ऊँचा है, फलानी जाति का नीचा। ऐसे समाज में ऊँच-नीचापन आ गया। चातुर्वर्ण्य की रचना में जिस ऊँच-नीचपन का खयाल नहीं था, वह समाज में दाखिल हो गया। इतना बड़ा फर्क मूल योजना में हुआ। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र जो भी हो, जिसे जो काम मिले, उसे वह

प्रामाणिकता से करे और निष्काम बुद्धि रखकर भगवान को अपना कर्म समर्पण करे। वेदाभ्यास का काम हो, गोरक्षण या ग्राम-सफाई का काम हो—जिसे जो काम मिले, वह निष्काम भाव से परमेश्वर को समर्पण करे तो सबको समान रीति से मोक्ष मिलेगा, ऐसी योजना थी। सबका समान दर्जा था और सबकी प्रतिष्ठा भी समान थी। किसीको कम-बेसी प्रतिष्ठा नहीं थी। गीता ने भी कहा है कि सबके लिए मोक्ष समान है। सबकी आध्यात्मिक और नैतिक प्रतिष्ठा समान है। परन्तु धीरे-धीरे उसमें से यह सारा तत्त्व चला गया। ब्राह्मण सबसे ऊँचा बन गया, शूद्र सबसे नीचा। क्योंकि ब्राह्मणों को भी शूद्र का काम नीचा काम लगा। अध्ययन और अध्यापन करना ऊँचा काम है और ग्राम-सफाई करके झाड़ू लगाना नीचा काम है। हालाँकि यह काम जरूरी है और इसके बगैर समाज का काम नहीं चलेगा, फिर भी वर्णों में इस तरह ऊँच-नीचपन आ गया। फिर दूसरे कामों में भी ऊँच-नीचपन आ गया। अमुक काम ऊँचा, अमुक नीचा, अमुक वर्णवाला नीचा। नीचे के वर्णवालों का काम हम नहीं करेंगे। अगर करना हुआ तो आपद्धर्म समझकर करेंगे। पर नीचा काम स्वीकार नहीं करेंगे।

व्यवस्था में आमूल परिवर्तन

यों अपने देश में धीरे-धीरे परिवर्तन होता गया। चातुर्वर्ण्य की व्यवस्था बिल्कुल बदल गयी। उसके परिणामस्वरूप समाज के महत्त्व के काम करने के लिए जिस मनुष्य को समाज ने रोक रखा था, उस मनुष्य की प्रतिष्ठा ही नहीं रही। इसके कारण लोगों के जीवन में उत्साह नहीं रहा। तब सारे देश में अनेक जातिवाले लोग हो गये। देश-रक्षण के काम में उन्हें अधिक रस नहीं रहा। वैश्य व्यापार का ही काम करते रहे। दूसरा कोई काम वे नहीं करते। दूसरों का भी वही हाल रहा। सारे समाज के रक्षण, शिक्षण और पोषण की जिम्मेवारी का विचार समान रीति से कोई न करता। ऐसी स्थिति में हिंदुस्तान के टुकड़े हो गये। अंग्रेज यहाँ आये। उन्होंने यहाँ अपना राज्य चलाया। ऊँच-नीचपन तो पहले से था ही। ब्राह्मण अपने हाथों से काम करना भी पाप समझते थे, इसलिए ये लोग ऊँच कहलाये। दूसरे लोग जो काम करनेवाले थे, वे बिल्कुल नीचे की श्रेणी के श्रम करनेवाले मजूर माने गये। जब अंग्रेजों ने यहाँ अंग्रेजी शिक्षण शुरू किया, तब अंग्रेजी सीखे हुए मनुष्य का दर्जा ऊँचा हो गया। ऐसे लोग केवल दो प्रतिशत थे। अंग्रेजी तालीम के दो परिणाम आये। एक तो तालीम पानेवाले लोग काम नहीं करते थे। किसी प्रकार का शारीरिक श्रम करने की उन्हें आदत नहीं थी। सब तालीम अंग्रेजी में ही चलती थी, इसलिए अंग्रेजी का महत्त्व खूब बढ़ा। जो लोग अंग्रेजी परीक्षा पास करते थे, उनकी तनखाह बढ़ती थी और समाज में उनकी प्रतिष्ठा भी अधिक होती थी।

एक ओर श्रमिक, दूसरी ओर काम न करनेवाले

इस तरह से एक बाजू से सारा काम करनेवाला समाज और दूसरी बाजू ऐसे लोग, जो बिल्कुल ही काम न करें और काम को हीन मानें। ब्राह्मण तो सब काम को हीन मानते थे। अंग्रेजी पढ़े लोग तो हर काम को और ज्यादा हीन मानने लगे। इस तरह ये लोग समाज से अधिक दूर हो गये। अंग्रेजी सीखे हुए लोग लोगों की भाषा में ज्यादा बोल भी नहीं सकते थे। अंग्रेजी सीखे हुए लोग सामान्य लोगों से बात नहीं करते थे। अंग्रेजी के मार्फत उन्होंने तालीम पायी थी, इसलिए वे अंग्रेजी में ही बोलते थे। परिणामस्वरूप सामान्य जनता और उनके बीच में एक बड़ा पहाड़ खड़ा हुआ और हिंदुस्तान के दो टुकड़े हो गये। एक शिक्षित वर्ग, दूसरा अशिक्षित वर्ग। दोनों के बीच बड़ा अन्तर हो गया। यह अन्तर आज भी हमें बहुत तकलीफ देता है। स्वराज्य के बाद भी अभी तक यह अन्तर कम नहीं हुआ है, यह मैं देखता हूँ। इसलिए बहुत दफा ऐसा लगता है कि यह जो शिक्षण चलता है, उसमें एक बुनियादी गलती है, जिसे सुधारे बिना समाज एक-रस नहीं होगा।

श्रम का अनादर

आज समाज के दो भाग निश्चित हो गये हैं। परन्तु उससे हिंदुस्तान का समाधान नहीं होता है, यह भी निश्चित है। इसलिए शहरवालों और गाँववालों के जीवन में जिस प्रकार से श्रम की योजना है, उसका आदरपूर्वक स्वीकार करना चाहिए। गाँववाले श्रम करते हैं, फिर भी आज श्रम की प्रतिष्ठा नहीं है। किसान अपने लड़के को पढ़ाना चाहता है। आज उसे स्वयं खेती का काम करना पड़ता है, परन्तु वह सोचता है कि जो काम वह स्वयं करता है, उससे उसका लड़का मुक्त हो जाय तो अच्छा है। शहरवालों में तो श्रम को प्रतिष्ठा है ही नहीं, श्रम करनेवालों में भी श्रम की प्रतिष्ठा नहीं है। इस तरह सारा भारत एक भयानक अवस्था में है। स्वराज्य आ गया है, तिसपर भी एक वर्ग ऐसा तैयार हुआ है, जो आम जनता से विरुद्ध है। वह 'नौकरवर्ग' या 'सेवक वर्ग' कहलाता है। परन्तु वह समाज से अलग है और समाज से ऊँचा जीवन जीनेवाला है। समाज से ऊँची प्रतिष्ठा मिलनी चाहिए—ऐसी आकांक्षा रखनेवाला एक नया वर्ग आज तैयार हुआ है। पुराने वर्ग का निराकरण तो एक बाजू रह गया, एक नया ही वर्ग निर्माण हुआ, जो आज सबसे बड़ा भय निर्माण कर रहा है।

ज्ञान और कर्म में अन्तर न हो

आज देश में शिक्षण-संस्थाएँ चलती हैं। छात्रालय भी चलते हैं। छात्रों को आध्यात्मिक संस्कृति मिले, ऐसी व्यवस्था भी होती है। सबेरे उन्हें जल्दी भी उठाया जाता है, काम कराया जाता है और स्कूल में जो नहीं मिलता है, वैसा ज्ञान पूरा करने के लिए उनको मौका मिलता है। परन्तु उसका मुख्य अंश तो विद्यालय में जो मिलता है, वही रहता है। छात्रालयवाला ज्ञान तो चटनी जैसा हो जाता है। भोजन में रुचि आये, इसलिए चटनी है, परन्तु आहार की मुख्य वस्तु तो गरम रोटी और करेले की तरकारी है। विद्यालय जो परोसे, वही मुख्य रहेगा। उससे ज्यादा छात्रालय सेवा नहीं कर सकेगा। उसमें विद्यालय की थोड़ी-बहुत रुचि बढ़ेगी, उसके सिवाय दूसरा कुछ नहीं होगा। छात्रालय में जल्दी उठना पड़ता है, इसलिए उठते भी हैं। विद्या पूरी करने के बाद नौकरी में लग जाते हैं। फिर क्यों जल्दी उठेंगे? याद करेंगे कि छात्रालय में जल्दी उठते थे। वहाँ ठंडे पानी से नहाते थे। इन सब बातों को याद करने से ज्यादा कीमत वे नहीं देते हैं। यह कीमत तभी दी जायगी, जब विद्यार्थियों को आज जो मूल्य सिखाये जाते हैं, वे बदलेंगे और नये मूल्यों की स्थापना होगी। बापू ने स्पष्ट कहा था कि पुरानी विद्या के साथ अगर पंद्रह-बीस मिनट उद्योग करने दो तो उससे कुछ नहीं होगा। नये मूल्यों की स्थापना होनी चाहिए। कर्म और ज्ञान के बीच कोई फर्क न हो, ऐसी विद्या देनी चाहिए। जब तक कर्म और ज्ञान में फर्क रहेगा, कर्म से ज्ञान ऊँचा रहेगा, तब तक किसीका काम बढ़ेगा तो किसीको ज्ञान नहीं मिलेगा, ऐसा भी होगा। इसलिए दोनों को ज्ञान मिलना चाहिए और दोनों को ज्ञान के साथ शरीर-परिश्रम करना चाहिए।

शांकरभाष्य से अच्छी नौकरी

आज तो पाठ्यक्रम में आध्यात्मिक विद्या भी पसंद करते हैं,

साथ-साथ अंग्रेजी भी। उसके साथ-साथ नौकरी के विषय भी चाहते हैं। उसमें आध्यात्मिक विद्या बालकों को अच्छी लगती है। परन्तु इस आध्यात्मिक विद्या की कीमत कितनी ? कुछ भी नहीं। बी० ए० में संस्कृत ली हो तो शांकरभाष्य पढ़ेंगे कि दुनिया में कुछ नहीं। इसलिए दुनिया से हमें अलिप्त रहना चाहिए, मुक्त रहना चाहिए। परन्तु इस शांकरभाष्य की कीमत क्या है ? इतनी ही कि परीक्षा में सेकण्ड क्लास आ जाय, बी० ए० आनर्स हो जायँ। इससे अच्छी नौकरी मिलेगी। शांकरभाष्य का उत्तम अध्ययन करके अच्छी नौकरी खोजेंगे तो उससे आध्यात्मिक शक्ति कैसे आयेगी ? शंकराचार्य को अगर मालूम होता कि उनके भाष्य का उत्तम अध्ययन करने से अच्छी नौकरी मिलती है तो वे भाष्य लिखते ही नहीं। ऐसी खबर उन्हें होती तो कृपापूर्वक वे मौन रखते। परन्तु शिक्षण में संस्कृत विषय रखा है और वह अनिवार्य है। इसलिए शांकरभाष्य पढ़ना पड़ता है। परन्तु उस पढ़ने का तात्पर्य इतना ही है कि परीक्षा पास करें और नौकरी प्राप्त करें।

शिक्षा की बुनियाद बदलें

इन सब चीजों पर हमें गंभीर विचार करना चाहिए। बहुत-से लोग मानते हैं कि इसमें थोड़ी-बहुत सेवा होती है। अगर सुन्दर छात्रालय न हों तो थोड़े-बहुत संस्कार की भी व्यवस्था नहीं होगी, इसलिए अच्छा ही है। मैं कहता हूँ कि ये जो कुछ सेवा करते हैं, उससे सामान्य समय में संतोष मानना ठीक है; परन्तु आज तो जमाना ऐसा है कि उसमें विज्ञान के कारण अपने जीवन की बुनियाद या तो मजबूत होगी या उखड़ जायगी। इसका विकास होना चाहिए। इसपर नियमन या अधिकार न चले। इसलिए अगर निर्भयता से विचार न हो तो उसके जीवन का पाया उखड़ जायगा। आज विज्ञान से अच्छी रचना हो सकती है, परन्तु इससे कुछ नहीं होगा। रोगी को मुख्य चीज तो औषध चाहिए। परन्तु औषध न देकर मनुष्य पंखा लेकर बैठा रहे, हवा उड़ाये तो उससे रोग नहीं मिटेगा। रोग के लिए तो दवा ही चाहिए। रोग जाने के बाद फिर मक्खी उड़ाये तो चलेगा। रोग-निवारण की व्यवस्था हो गयी हो तो दूसरी-तीसरी सेवा भी चलना ठीक होगा, परन्तु रोग-निवारण करने के बदले जहर देने की व्यवस्था हो तो उस स्थिति में पंखा झलना आत्मवंचना होगी।

इस दृष्टि से आप देखिये और इसपर विचार कीजिये। मेरी 'शिक्षण-विचार' नाम की पुस्तक पढ़िये। उसमें मेरे शिक्षण के बारे में विचार हैं। कम-से-कम गुजरात में शिक्षण के बारे में स्वातन्त्र्य का झंडा ही गुजरात के शिक्षक अपने हाथ में लें और आज की शिक्षण-पद्धति के सामने बगावत करें और नयी शिक्षण-पद्धति दाखिल करने की हिम्मत करें तो अच्छा होगा।

प्रार्थना-प्रवचन

ऋंबा (मध्य सौराष्ट्र) २०-११-'५८

गाँव का सामूहिक संकल्प आवश्यक

मध्य-युग में साधनाओं के जो प्रकार चले, उनमें सामूहिक साधना नहीं थी। व्यक्तिगत साधना का बाहुल्य था। ऐसी एक भावना बन गयी कि साधना तो व्यक्तिगत ही होती है, सामूहिक नहीं होती। दूसरे व्यावहारिक काम भले ही सामूहिक हों, परन्तु साधना तो व्यक्तिगत ही होनी चाहिए। मैं मानता हूँ कि ऐसी भावना का यह परिणाम है कि आज सज्जनों की शक्ति एकत्र नहीं होती है। यह बहुत विचित्र है कि दो सज्जन एक साथ काम नहीं कर सकते हैं, परन्तु दो सामान्य लोग एक साथ काम कर सकते हैं। आज दुनिया में एक समस्या है कि सामूहिक संकल्प करने में सज्जनों को आगे आना चाहिए। जो मनुष्य जितना ज्यादा सात्त्विक होता है, उतना ही वह समाज से ज्यादा अलग हो जाता है। सामाजिक संकल्प में उसका भाग नहीं होता है, वह आगे नहीं जाता है। फिर इन कामों में राजस, तामस आते हैं। सारी समाज-रचना का आधार राजस-तामस योजना पर रहता है। सात्त्विक मनुष्य स्वयं इस काम से अपने को मुक्त रखता है, इसलिए इस सात्त्विकता में तामस शक्ति का अंश मिला हुआ है, वह उसे परखता नहीं है, समझता नहीं है।

कम्युनिटी प्रोजेक्ट के लिए आधार ग्रामदान

कम्युनिटी प्रोजेक्ट के प्रमुख डे साहब तमिलनाड़ में मुझसे मिलने आये थे। उन्होंने तमिलनाड़ में कुछ ग्रामदानी गाँव भी देखे और मेरे पास आकर कहने लगे कि ग्रामदानी गाँवों में मैं गया था। वहाँके लोगों को बहुत प्रश्न मैंने पूछे। उन प्रश्नों का उन्होंने जो जवाब मुझे दिया, उसपर से ऐसा लगता है कि कम्युनिटी प्रोजेक्ट का आरम्भ अभी यहाँ होना है। जहाँ कम्युनिटी ही नहीं, वहाँ कम्युनिटी प्रोजेक्ट किस तरह होगा ? परन्तु अगर ग्रामदान हो जाय, ग्राम-स्वराज्य हो जाय तो कम्युनिटी प्रोजेक्ट के लिए एक उत्तम आधार मिल जायगा और फिर जिस तरह चाहते हैं, उस तरह सब काम कर सकते हैं।

सामूहिक पुरुषार्थ साधें

अभी सारा देश अनेक जाति, पंथ, पक्ष और व्यक्तिगत स्वार्थों में बँटा है। आज का गाँव कोई समाज ही नहीं है। ऐसा समाज बनाना हिन्दुस्तान का प्रथम कार्य है। गाँव में ऐसा समाज हो तो उसे हम अधिकार दें। गाँववाले अपने गाँव का कारोबार स्वयं ही सँभालें और फिर इसमें अगर मदद की इच्छा हो तो वह प्राप्त करें। परन्तु मैं पूछना चाहता हूँ कि यह अधिकार देनेवाले आप कौन हैं ? यह जरा आप कहिये, आप कौन हैं ? जिनको अधिकार दिया है, वे भी तुम्हारे ही लोग हैं न ? परन्तु यह बात मैं जो कहता हूँ, वह समझने की शक्ति गाँव में नहीं है। आज तो गाँव में एक पुलिस जाता है तो लोग घबड़ा जाते हैं। यह नहीं सोचते कि हम चुनाव में जिन्हें नौकर के तरीके पर चुनकर भेजते हैं, उनके नौकर के नौकर का वह नौकर है। आज मतदान का अधिकार मानो एक नाटक ही है।

वेद में एक मंत्र आता है : 'न हि श्रान्तस्य सख्याय देवाः' श्रम करके मनुष्य जब श्रान्त हो जाता है, तब सब देव उसे मदद करते हैं। कोई आलसी हो, व्यसनी हो, ऐसे लोगों को परमेश्वर मदद नहीं करता है। उनकी सरकार भी मदद करे तो क्या किसी तरह शक्ति दे सकेगी ? गाँव स्वराज्य का एक घटक है और हर गाँव में ग्राम-स्वराज्य होना चाहिए, ऐसा संकल्प हर गाँव करे। वे अगर संकल्प नहीं करेंगे तो गाँवों को रक्षण नहीं मिलेगा। आज गाँव में एक तेली कोल्हू चलाता है, दूसरा

एक मोची है। परन्तु इस तेली का तेल मोची को महँगा पड़ता है, इसलिए वह नहीं लेता है और मोची जो जोड़ा बनाता है, वह तेली नहीं लेता है, क्योंकि यह महँगा पड़ता है। बाटा के जूते इससे सस्ते होते हैं, इसलिए खरीदते हैं। देखो, अगर एक-दूसरे को मदद करना महँगा हो जायगा तो एक गाँव में क्यों रहते हो? तेली जरा महँगा जूता ले ले तो मोची के घर में वक्त पर पैसा पहुँच जायगा और जब मोची तेल चाहिए, तब वह महँगा तेल खरीद लेगा। इसलिए जो ज्यादा पैसा मोची को उसने दिया था, वह फिर से उसके घर में आ गया। जिस तरह फुटबॉल का गेंद हाथ में आता है तो तुरंत ही हम आगे फेंक देते हैं, उसी तरह से यह चलता है। फुटबॉल का गेंद आगे न फेंकें, हाथ में रखें तो खेल वहीं रुक जायगा। उसी तरह से संपत्ति भी अपने घर में नहीं रखनी चाहिए। जैसे ही वह अपने घर में आती है, उसे तुरन्त लात मारकर दूसरे के घर में भेज देना चाहिए। इस तरह अगर समाज में चलेगा तो जिस तरह शरीर में रुधिराभिसरण होता है, उसी तरह समाज में भी लक्ष्मी का रुधिराभिसरण होना चाहिए।

गाँव में बुनकर, चमार, तेली वगैरह जो लोग होते हैं, वे गाँव में पैदा हुई वस्तु खरीदें और जब दूसरे को जरूरत हुई, तब उसे पहुँचा दें। उसमें क्या बिगड़ा? परन्तु आज गाँव में जो संपत्ति होती है, उससे समाधान नहीं होता। संपत्ति घर में भी चाहिए, ऐसी वासना होती है। इसलिए कबीर कहता है:

'पानी बाढ़ो नाव में घर में बाढ़ो दाम।
दोनों हाथ उलीचिये यही सयानो काम॥'

पानी तो चाहिए, परन्तु नौका के बाहर, नौका के अंदर नहीं। कबीर ने त्याग का काम नहीं बताया, परन्तु 'यही सयानो काम' याने यही सयानापन है। कबीर यह एक बुद्धि की बात करता है। पैसा घर में नहीं चाहिए। घर के बाहर याने समाज में चाहिए। अगर घर में पैसा आ गया तो दोनों हाथों से समाज को देना सयानापन है। यह सामाजिक अर्थशास्त्र है।

सामाजिक शास्त्र

आज गाँव में जो चीज रुकावट डालती है, जिस चीज की अड़चन है, वह गाँव की मुख्य वस्तु तो जरूर है, पर वह विशिष्ट मनुष्य के हाथ में होगी तो दूसरे मनुष्य उससे वंचित होंगे। इसलिए उससे सामूहिक संकल्प करने में रुकावट होगी। इस तरह सामूहिक संकल्प सम्भव नहीं दीखता है। गाँव की सामूहिक चीज गाँव की ही होनी चाहिए। पचास-पचपन साल पहले टॉल्स्टॉय ने लिखा था कि जमीन की मालिकी महान अनीति, महान अधर्म है, महान अन्याय है। वे तो द्रष्टा थे, इसलिए उन्हें दृष्टि थी। जब तक हम जमीन की मालिकी अपने हाथ में पकड़ रखेंगे, जब तक हिन्दुस्तान के गाँव में संकल्प नहीं होता है, तब तक ग्राम-स्वराज्य नहीं होगा। तब तक ऊपर से जो मदद आयेगी, वह किसी मनुष्य के लिए ही होगी और उस मदद की जिसे जरूरत नहीं है, उसे मिलेगी, जिसे जरूरत है, उसे नहीं मिलेगी तो गाँव की विषमता का प्रमाण बढ़ेगा। इससे गाँवों को लाभ नहीं होगा। किसान जानते हैं कि जमीन में एक बाजू खड्डा हो और दूसरे बाजू टीला हो तो खेती अच्छी नहीं होती। अगर उस टीले से मिट्टी खोदकर उस खड्डे में डाली जायगी और खड्डा भरा जायगा तो भूमि समतल हो जायगी और फिर अच्छी खेती होगी। उसी तरह अपने शरीर का हाल है। शरीर में कोई खास मांसपेशी अगर बहुत बढ़ जायगी तो घातक होगी। सैंडो उत्तम व्यायाम-वीर कहलाया। अब उसकी पद्धति अमान्य हुई, क्योंकि वह जल्दी मर गया। इसलिए केवल स्नायु से शक्ति बढ़ेगी? उससे शरीर की शक्ति नहीं बढ़ेगी। शरीर के तो अंदर जो शक्ति हैं, जो जीवन-तत्त्व है, वह बढ़ना चाहिए। इस तरह गाँव में भी अगर एक मांसपेशी फूलेगी तो सारे गाँव का पोषण खींच लेगी।

बाहर से ज्यादा मदद लेने में मुझे खतरा लगता है। बाहर से अगर मदद न ली जाय तो भी खतरा है। इससे गाँव सूख जायगा। जरूरत हो, तभी मदद मिलनी चाहिए। जिसको मदद की जरूरत है, उसे अगर मदद नहीं मिलेगी और जिसे मदद की जरूरत नहीं है, उसे मदद मिलेगी तो उसमें बड़ा खतरा है। गाँव में आज की स्थिति में पात्र-अपात्र का विचार बहुत मुश्किल हो जाता है। बिहार में मुजफ्फरपुर और दरभंगा जिले में बहुत बारिश हुई थी और सारा प्रदेश पानी में डूब गया था। उस वक्त गाँव को मदद कैसे देनी चाहिए, यह समझ में नहीं आता था। सरकार ने रामकृष्ण मिशन से प्रार्थना की कि वह अगर अपने मार्फत मदद करे तो ठीक होगा। ये लोग मुझसे मिलने आये। उन्होंने कहा कि इतने सारे लोग उसमें होते हैं कि किसे मदद देनी है और किसे नहीं, यह समझ में नहीं आता है। ग्रामदानी गाँवों को और सारा गाँव एक हुआ हो तो ठीक। परन्तु अगर ऐसा न हो तो बाहर से समान रूप से मदद नहीं दी जा सकती।

सेवक की साधना

मुख्य बात यह है सेवकों को कार्य नहीं करना चाहिए, उपकार करना चाहिए। उपकार का अर्थ समझने जैसा है। उपकार याने थोड़ी-सी मदद करनेवाला। 'उपकार' नम्र शब्द है। मुख्य कार्य करनेवाला दूसरा होता है, परन्तु उपकारी जरा-सी मदद करता है, इसमें अहंकार सम्भव नहीं। इसलिए सेवक सामान्य अर्थ में तो उपकार करन लगे, बाकी संस्कृत अर्थ में उसे उपकार करना चाहिए, गुजराती अर्थ में नहीं। याने जरा मदद करे, बाकी सारा गाँव अपनी शक्ति पर खड़ा रहे, इस तरह से विकास करें। ऐसी युक्ति सेवक को साधनी चाहिए। सेवक तो निमित्तमात्र है। ग्रामदान में सम्पर्क होना चाहिए।

मध्यबिंदु : खादी नहीं, भूमि

आज भारत में ऐसे संकल्पवाले कुछ गाँव तैयार हुए हैं। दरभंगा जिले में कुछ सेवक तैयार हुए हैं। इन लोगों ने संकल्प किया है कि हम अपने गाँव में खादी के सिवाय दूसरा कपड़ा नहीं लायेंगे। वहाँ अस्सी प्रतिशत खादी चलती है। वहाँ एक विशेष परिस्थिति है, उसके कारण वहाँ खादी बहुत ही मददगार है, यह वे समझ गये हैं। दूसरी जगह पर खादी का इतना स्थान नहीं है, ऐसा ये लोग मानते हैं। परन्तु बापू कह गये थे कि चरखा मध्यबिंदु है और दूसरे सारे ध्येय परिधि के बिंदु हैं। मैं पूछता हूँ कि यह परिधि, यह मध्यबिंदु और ये वर्तुल तो सच हैं, परन्तु ये सब कहाँ करने हैं? वर्तुल खींचना है तो भी जमीन पर ही खींचोगे न? इसलिए मैंने जमीन का सवाल लिया। मध्यबिंदु को खींचने के लिए नीचे कागज तो चाहिए न? तो यह भूमि यही कागज है। आप यह निश्चित समझ लीजिये कि जमीन का सवाल बाजू में रखकर खादी को अगर व्यापक करना चाहते हों तो वह बिल्कुल ही नहीं होनेवाला है। इसका दर्शन मैंने बहुत किया है। पचीस-तीस साल मैंने एक पूरे जिले में बहुत चक्कर काटे हैं। कुछ गाँव लिये और कुछ गाँव छोड़ दिये। कुछ गाँवों में दस प्रतिशत खादी हुई, कुछ गाँवों में बीस प्रतिशत खादी हुई, कुछ गाँवों में पचीस प्रतिशत हुई। कहीं वह बढ़कर कम भी होने लगी। गाँव में कहीं पचीस चरखे चलने लगे और फिर

थोड़े ही दिन में सेवक अगर वहाँसे गैरजाहिर हो गया, तो पचीस चरखे के पाँच ही रह जायेंगे। यों बेरीज के साथ-साथ वजाबाकी भी आती है, क्योंकि गाँव का संकल्प नहीं हुआ है, और बाहर से ये चीज लायें। क्योंकि जमीन का सवाल हमें पड़ता ही नहीं था। एक वक्त बापू से किसीने पूछा कि आप जमीन का सवाल क्यों नहीं लेते हैं? तो बापू ने कहा कि जमीन का सवाल स्वराज्य आने के बाद ही हम ले सकते हैं, अभी नहीं। ऐसा बापू ने सीधा स्पष्ट जवाब दे दिया था। जो मुख्य चीज है, वह हाथमें न लें और दूसरी-तीसरी चीजोंको हाथ में लेंगे, तो उसमें हमारा काम नहीं चलेगा। गीतामें एक श्लोक आता है कि अधिष्ठान पर ही सारा कर्तृत्व खड़ा होना चाहिए। तो हमें समझना चाहिए कि खादी आदि करण हैं और जमीन अधिष्ठान है। हमें मरना हो या शरीर को जलाना, तो भी जमीन चाहिए। शरीर को दफनाना हो, तो भी जमीन चाहिए। ज्यादा नहीं, तो तीन-साढ़े तीन हाथ तो चाहिए ही।

व्यक्तिगत शोषण

इंदौर में संडास साफ करने के लिए भंगी और उसकी पत्नी दोनों आते हैं। संडास का सारा मैला उठाने का काम पुरुष अपनी पत्नी को देता है और खुद गाड़ी चलाता है। यह सात-आठ साल पहले की बात है। परन्तु आज भी बहुत ज्यादा फर्क पड़ा होगा, ऐसा मानने का कारण नहीं है। एक ही शहर में ऐसा चलता है, ऐसा नहीं, बहुत शहरों में ऐसा चलता है। इस तरह पति भी पत्नी का शोषण करता है। शोषण की यह परंपरा चलती रहती है। अगर हम इस पर ध्यान न दें तो यह बन्द नहीं होगा। पति की सेवा करके पत्नी मुक्त हो सकती है, स्वतंत्र रीति से नहीं। परमेश्वर के पास पहुँचने के लिए बीच में एक एजेन्सी उसे चाहिए, पर पति को पत्नी की एजेन्सी की कुछ भी जरूरत नहीं है। पत्नी को पतिव्रता होना चाहिए, पर पति को पत्नीव्रत होना चाहिए, ऐसा कुछ नहीं। इस तरह सारा धर्म एकांगी बन गया है। ऐसा विलक्षण धर्म-प्रचार हुआ है, तो फिर धर्म कैसे टिक सकता है?

बेकारी की समस्या भूमि से मिटेगी

दूसरी एक मिसाल दूँ। कोई आदमी था, काम नहीं मिलता था, अपने लड़के का पालन नहीं कर सकता था, उसने चोरी की, तो उसे सजा के रूप में जेल में भेजा। जेल में वह बारह घंटे निश्चित जीवन जी सकता है। परन्तु जिनके लिए उसने चोरी की, उनकी क्या हालत है? उसकी पत्नी और उसके लड़के क्या करते हैं? घर में कोई कमानेवाला नहीं है, तो क्या होगा? वह स्त्री अपने लड़कों को कहती है कि देखो, अपने घर के सामने जो घर है, वहाँ एक चीज पड़ी है, वह तुम ले आओ। अब वह लड़का वह चीज लाने के लिए जाता है, तो घरवाला बाहर आता है और फिर वह माँ अपने लड़के पर गुस्सा हो जाती है। कहती है कि इस तरह चोरी की जाती है क्या? परन्तु वह जानती है कि चोरी ही आजीविका का साधन है और वह मनुष्य जेल में दो साल रह कर बाहर निकलता है, तो उसके साथ जो कैदी होते हैं, वे उससे पूछते हैं कि "क्यों भाई, अब तुम जाओगे क्या?" यों कहकर उनकी आँखों में आँसू आते हैं। तो वह कहता है कि "अरे, फिर सात-आठ दिन में वापस आया ही समझ लो।" क्योंकि यह बेकार मनुष्य है और बेकारों को सजा करने के लिए वहाँ भी एक बहुत बड़ी तनख्वाह देकर एक बेकार का सरदार वहाँ रखा है। बेकार के हाथ से बेकार को सजा दी जाती है। यह क्या न्याय है? उसके बदले में जो मनुष्य बेकार हो, उसे सजा करनी चाहिए कि देखो, तुझे तीन एकड़ जमीन मिलेगी, इस पर तू काम कर। तो तुम्हें और तेरे लड़के तथा पत्नी को काम मिलेगा और खाने को भी मिलेगा। यही सजा ठीक कही जायगी। ऐसा न्याय समाज में चलेगा, तो चोरी नहीं होगी।

वस्तुतः सजा किसे दी जाय?

आज तो समाज में अस्तेय-व्रत का पालन नहीं होता। उसका अगर भंग होता है, तो उसे सजा दी जाती है। दूसरी बाजू से समाज में अपरिग्रह का व्रत भी पालन नहीं करते हैं। परन्तु अपरिग्रह क व्रत के भंग के लिए सजा नहीं होती है। जो परिग्रह करनेवाला है, उसका तो स्वागत किया जाता है। उसे तकिया भी दिया जाता है। यह किसलिए? क्योंकि यह चोर का बाप है। उपनिषद् में एक श्लोक आता है—मेरे राज्य में कोई चोर नहीं है, क्योंकि संग्रह करनेवाला ही नहीं है। अगर कोई संगह करनेवाला नहीं होता है, तो स्वाभाविक ही चोरी भी नहीं रहती है। परन्तु आज चोरी गुनाह माना जाता है और संगह पुण्य माना जाता है। ऐसा एकांगी धर्म हो गया है। तो यह कसे टिकेगा? अगर चोरी पाप है, तो संग्रह भी पाप है। संगह पुण्य है, तो चोरी को भी पुण्य मानना चाहिए। ग्रीक भाषा में एक मान्यता है कि चोरी न करना कोई मेरी योग्यता नहीं है। पर चोरी करके पकड़ा न जाना योग्यता है। चोरी करके जब पकड़ा नहीं गया, तो बहुत बड़ा पुण्यवान्। इस तरह समाज को एकांगी नीति सिखाते हैं, तो धर्म चलता नहीं। आज भी समाज में एकांगी नीति ही चलती है। ऊपर के वर्ग अपने संरक्षण के लिए ऐसी नीति बनाते हैं।

भक्ति भजन में नहीं, काम में

भजन मंडलीवाले रात में चार-चार, छह-छह घंटे भजन करते हैं, इतना भजन मजूर नहीं कर सकते हैं। उनको तो सारा दिन काम करना पड़ता है। बापू ने हमें सिखाया है कि परमेश्वर की भक्ति हम कितने मिनट तक भजन करते हैं, उस पर आधार नहीं रखती है। फलाना समय निश्चित करके खेत में कुदाली लेकर शरीर-परिश्रम का काम करेंगे, तो वह भक्ति का एक अंग ही है और वाणी की उपासना करना भी भक्ति का अंग ही है। परन्तु अमुक समय निश्चित रखकर खेत में काम के लिए जाना चाहिए। परन्तु यहाँ तो सारी रात भजन चलता है और फिर सारा दिन सोते हैं। इस तरह आज एकांगी धर्म प्रचलित हो गया है। उसके कारण गाँव का सामूहिक संकल्प ही नहीं हो सकता है।

यह निश्चत है कि भारत में ग्रामोद्योग के सिवा दूसरी किसी भी रीति से उत्थान नहीं हो सकेगा। आज ग्रामोद्योग के जो औजार हैं, वे कायम रहने चाहिए, ऐसा नहीं। उनमें सुधार कर सकते हैं। पर गाँव के उद्योगों का अभिमान गाँव के लोगों को होना चाहिए और जमीन की मालिकी सारे गाँव की होनी चाहिए। गाँव का भला करना है, तो गाँव को स्वावलम्बी बनना होगा। गाँव स्वावलम्बी नहीं होंगे, तो ये शहर टिकेंगे क्या? और अपना देश भी टिकेगा क्या? मान लो कि कल युद्ध शुरू हुआ, तो गाँवों को कौन बचायेगा? सर्वत्र शान्ति है, इसी कल्पना पर पंचवार्षिक योजना खड़ी है। दुनिया में अगर शान्ति भंग हो जायगी, तो योजना नहीं चलेगी। यह सारा हमें गाँववालों को समझाना चाहिए और अगर उस तरह हम समझायेंगे, तो हम हिन्दुस्तान की उचित सेवा करते हैं, ऐसा कहा जायगा। देश अभी अत्यन्त परावलंबी हो गया है। हर गाँव को स्वावलंबी बनाना चाहिए। यह ग्रामदान और भू-दान का उद्देश्य है। इसपर आप लोग विचार करें और सामूहिक संकल्प किस तरह हो, इसकी युक्ति कार्यकर्ता ढूँढ़ निकालें।

अनुक्रम

१. अकार को विभूति···	चित्रासणी	१ जनवरी	३३
२. कोई हमे मारे···	जगुदण	२५ दिसंबर	३५
३. आज की शिक्षण···	अलियावाड़ा	२६ नवंबर	३६
४. गाँव का सामूहिक···	श्यंबा	२० नवंबर	३८

श्रीकृष्णदत्त भट्ट, अ०भा० सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में सम्पादित, मुद्रित और प्रकाशित।